Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SHISRRJ | Volume 1 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

मीमांसा दर्शन के अनुसार वाक्यार्थ स्वरूप

डॉ० मधुमिता
A-21, बैंकमेन्स कॉलोनी,
चित्रगुप्तनगर, कंकरबाग
पटना, बिहार, भारत

सारांश – मीमांसकों का वाक्य के क्षेत्र में अवतार बहुत महत्त्वपूर्ण रहा क्योंकि एक ओर प्राछीन मत अन्विताभिधानवाद द्वारा शब्द की स्वतन्त्र सत्ता और सामान्य वाचकता को वे नहीं मानते तो दूसरी ओर अभिहितान्वयवाद के नवीन मत से पदों की स्वतन्त्र सत्ता और वाचकता भी उन्हें स्वीकार्य है। अर्थात् अज्ञात भाषा के बोध के लिए पहला पक्ष ग्राह्य है; जबकि अभिहितान्वयवाद का नया पक्ष ज्ञात भाषा के क्षेत्र में कारगर है। हम शब्दार्थ जानते हों तभी विशिष्टार्थ के रूप में वाक्यार्थ बोध कर सकेंगे।

प्रमुख शब्द – भावना, साध्य, करण, इतिकर्तव्यता, आर्थी, शाब्दी, वाक्यार्थ, मीमांसा इत्यादि।

संस्कृत वाक्यरचना तथा उसकी अर्थ-पद्धति को लेकर मीमांसा दर्शन में इतना अधिक विचार हुआ है कि उसे वाक्यशास्त्र कहा जाने लगा। मीमांसा दर्शन में भूत और भव्य अर्थात् कारक पदार्थ एवं क्रिया पदार्थ के परस्पर सम्बद्ध उच्चारण को वाक्य कहते हैं- **तद्भूतानां क्रियार्थेन समाम्नायोऽर्थस्य तन्निमित्तत्वात्।**[1] जिस सम्पूर्ण अर्थ को वाक्य के द्वारा प्रकट किया जाता है वह अर्थ मुख्यत: क्रिया पर आश्रित है किन्तु ये क्रियाएँ साधन के रूप में सिद्ध पदार्थो से अन्वित होकर स्वयं अभिनिष्पन्न होती हैं। तभी ये समूह का अर्थ दे पाती हैं। मीमांसा-दर्शन में भी व्याकरण के समान क्रिया को सबसे प्रमुख स्थान देते हुए इसके सिद्ध साधनों को (कारकों को) वाक्य में सहयोगी माना गया है। शबरस्वामी ने तर्कपाद के वाक्याधिकरण के प्रथम सूत्र तद्भूतानाम् इत्यादि (1.1.25) की व्याख्या में स्पष्ट कहा है

तेष्वेव पदार्थेषु भूतानां वर्तमानानां पदानां क्रियार्थेन समुच्चारणम्।

नानपेक्ष्य पदार्थान् पार्थगर्थ्येन वाक्यमर्थान्तरप्रसिद्धम्।।[2]

शबरस्वामी तक मीमांसा दर्शन में वाक्य तथा उसके अर्थ को लेकर कोई मतभेद उत्पन्न नहीं हुआ था किन्तु शाबरभाष्य के दो व्याख्याकारों कुमारिलभट्ट तथा प्रभाकरगुरु ने उपर्युक्त सन्दर्भ की ऐसी व्याख्या की कि परवर्ती मीमांसादर्शन दो प्रस्थानों में विभक्त हो गया। एक को (अर्थात् कुमारिलभट्ट के अनुयायियों को) अभिहितान्वयवादी कहा गया और

प्रभाकरगुरु के पक्षधरों को अन्विताभिधानवादी के रूप में प्रसिद्धि मिली। यद्यपि उपर्युक्त मत वाक्य के सन्दर्भ में था तथापि इन दोनों मतों में अन्य कई विषयों को लेकर भी मतभेद प्रकट हुए। पूरा मीमांसादर्शन एक प्रकार से इन दोनों मतों में विभक्त हो गया।

अभिहितान्वयवाद के अनुसार वाक्य के घटक पद पहले सामान्य अर्थ का बोध कराते हैं बाद में वे तीन हेतुओं का आश्रय लेकर विशेष का बोध कराते हैं। ये तीन हेतु अन्य तन्त्रों में भी प्रसिद्ध हैं – आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि। जो विशेष रूप अर्थ होता है वही वाक्यार्थ है, उसे तात्पर्यार्थ भी कहा जाता है। इस मत में यह वाक्यार्थ मुख्यवृत्ति या अभिधावृत्ति के वश में नहीं है। इसीलिए इसके बोध के लिए तात्यर्यावृत्ति नामक एक पृथक् शब्द शक्ति मानी गयी है। मम्मट ने इसीलिए **"तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्' (अत्रापि संघातः क्रमः इत्यभिहितान्वयपक्षे लक्षणद्वयम्। आख्यातशब्दः पदमाद्यम् पृथक् सर्व पदं साकांक्षम् इत्यन्विताभिधानपक्षे लक्षणत्रयमिति विभागः।)** [3] कहा है और विश्वनाथ ने अभिधा, लक्षणा एवं तात्पर्य वृत्तियों को मानकर व्यञ्जना को चौथी वृत्ति कहा है। [4] वाक्य को विशेषार्थ या अपदार्थ (घटक पदों के अर्थों से भिन्न) मानने की बात पतञ्जलि और कुछ दूर तक शबरस्वामी भी मानते हैं। इस सम्बन्ध में विश्वनाथ लिखते हैं –

वृत्तीनां विश्रान्तेरभिधातात्पर्यलक्षणाख्यानाम्।

अङ्गीकार्या तुर्या वृत्तिर्बोधे रसादीनाम्।। [5]

सादृश्य के कारण, लाघव की दृष्टि से, अन्वय–व्यतिरेक का आश्रय लेकर पद और पदार्थ की कल्पना की जाती है। लोकव्यवहार के लिए ऐसा करना आवश्यक है। वाक्य तो मुख्य है और संसर्ग ही वाक्यार्थ है। प्राचीन दृष्टिकोण से अभिहितान्वयवाद का इतना ही अन्तर है कि इस वाद में वाक्यार्थ की प्रतीति पदार्थ–प्रतीति के बाद ही मानी जाती है। पदार्थों का ज्ञान जब तक नहीं हो, तब तक वाक्यार्थ–बोध नहीं होता।

इस वाद में यह माना जाता है कि शब्दों में मुख्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ ज्ञात कराने की शक्ति तो रहती है किन्तु वाक्य में उनके परस्पर अन्वित होने पर ही वे वक्ता के वास्तविक तात्पर्य को व्यक्त कर पाते हैं। वाक्य से विच्छिन्न तथा एक–दूसरे से असम्बद्ध पद इस तात्पर्यार्थ को व्यक्त नहीं करते। **'रामो गच्छति'** जैसे वाक्य में प्रयुक्त पद अभिधावृत्ति के द्वारा अपना अर्थ पृथक्–पृथक् उपस्थापित करते हैं। वह वृत्ति पदार्थो को उपस्थापित करके व्यापार–रहित हो जाती है। वह पुनः वाक्यार्थ की प्रतीति कराने की क्षमता खो देती है। इस विषय में एक नियम चलता है– **'शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावः'** अर्थात् शब्द जब एकबार अपना काम (अर्थबोध) कर लेता है तो इसका व्यापार विरत हो जाता है, तब वह कोई काम नहीं कर सकता। अभिहितान्वयवाद में यह माना जाता है कि अनन्वित पदों में ही शक्ति होती है, वाक्यार्थ बोध के लिए दूसरी शक्ति माननी पड़ती है। [6] वाक्य में अन्वय का कोई अंश अभिधा के वश की बात नहीं है।

अन्विताभिधानवाद की दृष्टि में वाक्य से ही व्यवहार होता है, पद से नहीं। एकार्थपरक पदसमूह वाक्य है। सभी पद (पदार्थ नहीं) परस्पर मिलकर वाक्यार्थ का बोध कराते हैं। तदनुसार अन्वित का ही स्वशब्द से अभिधान होता है अर्थात् वाक्यार्थ की साक्षात् उपलब्धि होती है, परम्परया नहीं (जैसा कि अभिहितान्वयवादियों का मत है)। वाक्यार्थ संसृष्टस्वरूप है। पतञ्जलि ने इस वाद का मूल निम्नलिखित वाक्य में दिया है- **न वै पदार्थादन्यस्यार्थस्योपलब्धिः भवति वाक्ये।** [7]

कैयट ने इस अभिव्यक्ति का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि अपने-अपने अर्थ को व्यक्त करनेवाले पद वाक्य हैं। पदार्थ ही आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि के वश में परस्पर संसृष्ट होकर वाक्यार्थ है **(पदानि स्वं स्वमर्थं प्रतिपादयन्ति वाक्यम्। पदार्था एव आकांक्षा-योग्यता-सन्निधिवशात् परस्परं संसृष्टा वाक्यार्थ इत्यर्थः) ।** [8]

भर्तृहरि ने अन्विताभिधानवाद का संकेत वाक्यपदीय की इस कारिका में किया है -

नियतं साधनं साध्ये क्रिया नियतसाधना।

स सन्निधानमात्रेण नियमः सन् प्रकाशते।। (2.47)

अर्थात् साध्य (क्रिया) में साधन निश्चित होते हैं, इसलिए क्रिया को निश्चित साधनों वाली कहा जाता है। वह नियम (साध्य-साधन के नियत होने की स्थिति) तो पदों तथा पदार्थों के परस्पर सन्निधान मात्र से प्रकाशित होता है जगत् में अनिवार्यतया यह व्यवस्था वर्तमान है।

भावना

मीमांसा-दर्शन में वाक्यार्थ के तीन पक्ष रखे जाते हैं (1) विधि वाक्यार्थ है, (2) नियोग वाक्यार्थ है तथा (3) भावना वाक्यार्थ है। वाक्यपदीय में इन तीनों में से किसी पर विचार नहीं मिलता। [9] इनमें विधि और नियोग लिङ्, लोट् और कृत्य प्रत्यय के अर्थ हैं। इन्हें एकदेश का स्पर्श करनेवाला कहा जाता है। इसीलिए भर्तृहरि ने इन्हें अपनी विवेचन-वीथिका में स्थान नहीं दिया है। हाँ, भावना को वाक्यार्थ मानने का सिद्धान्त वस्तुतः क्रिया को वाक्यार्थ मानने के समान है। इनके स्वरूप में थोड़ा ही किन्तु महत्त्वपूर्ण अन्तर है, शेष बातें समान है। प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थ को लेकर ही वैयाकरणों एवं मीमांसकों में मतभेद है। [10]

वैयाकरण कहते हैं कि भावना प्रकृत्यर्थ अर्थात् धात्वर्थ है। दूसरी ओर मीमांसकों की मान्यता है कि भावना प्रत्ययार्थ अर्थात् आख्यातार्थ है। भावना केवल सकर्मक ही होती है क्योंकि भाव या फल वहाँ कर्म के रूप विधिनियोग- **"भावनासंज्ञास्तु वाक्यार्था न निरूपिता : यस्माद् भावना-क्रिययोः पर्यायता प्रायशो लक्ष्यते। केवलं प्रकृत्यर्थ-प्रत्ययार्थतायामत्र वैयाकरण-मीमांसकयोर्विवादः"** में रहता है । किन्तु क्रिया सकर्मक भी होती है, अकर्मक भी। **नदी वर्धते** - इस वाक्य में क्रिया अकर्मक है। सकर्मक का नियत होना भावना में तथा अनियत होना क्रिया में व्यवस्थित

है। फिर भी 'साध्य होना' दोनों का लक्षण है क्रिया का भी, भावना का भी। यह दोनों में समान धर्म है **(एवं भावना-क्रिययो: सकर्मकत्वस्य नैयत्यानयत्यरूप-भेदसत्त्वेऽपि साध्यत्वस्य भावनाक्रिययोरुभयोरविशिष्टत्वादभेद एव)।** [11]

भावना को वाक्यार्थ कहने की व्यवस्था भाट्टमत में मिलती है। इसे शाब्दी और आर्थी दो प्रकार का कहा गया है। लोक-व्यवहार में प्रयोजक का अभिप्राय-विशेष लिङ् आदि (आख्यात) का अर्थ होता है। जैसे - **'गामानय'** इस वाक्य में गो-कर्मक आनयन ही गुरु या प्रयोजक व्यक्ति का अभिप्राय है -ऐसा बोध होता है। वैदिक प्रयोग में तो कर्तृपुरुष का अभाव होने से (क्योंकि मीमांसा-दर्शन सिद्धान्त-रूप में वेदों को अपौरुषेय मानता है) लिङ् आदि शब्द-निष्ठ प्रेरणा-रूप व्यापार-विशेष के रूप में भावना ही लिङ आदि का अर्थ है। वैदिक विधि-वाक्य **'स्वर्गकामो यजेत'** इसमें लिङ् लकार के श्रवण से यही प्रतीति होती है कि यह मुझे प्रवृत्त कर रहा है (अयं मां प्रवर्तयति)। वह लिङ् (यजेत) मुझसे जुड़ी हुई प्रवृत्ति के अनुकूल व्यापार वाला है (मत्समवेत-प्रवृत्त्यनुकूल-व्यापारवान् अयं लिङ्)। [12] यह भावना लिङ् आदि शब्द में स्थित है, इसलिए इस भावना को शाब्दी कहते हैं। इसे **'यजेत'** इस क्रिया-पद में लिङ्त्व अंश से अभिहित किया जाता है।

दूसरी ओर आर्थी भावना पुरुष की प्रवृत्ति के रूप में होती है जो यागादि कार्य में सहायक है (**यागाद्यनुकूला पुरुषप्रवृत्तिरूपा भावना आर्थी**)। इस भावना का अभिधान **'यजेत'** इस क्रिया-पद के आख्यातत्व (लकार-सामान्य) अंश से होता है, लिङ् अंश से नहीं। इस प्रकार 'स्वर्गकामो यजेत' इस विधिवाक्य से यही प्रतीति होती है कि याग के द्वारा स्वर्ग की भावना करे (यागेन स्वर्ग भावयेत्) वही वाक्यार्थबोध होता है। इसे हम शाब्दबोध की प्रक्रिया में ढाल दें तो कह सकते हैं- **(स्वर्गकामकर्तृका यागादिकरणिका स्वर्गसाध्यिका भावना।)** आर्थी भावना में सर्वत्र धात्वर्थ का करण के रूप में अन्वय होता है, ऐसा प्रायिक ही रहता है।

शाब्दी भावना में सर्वत्र पुरुष -प्रवृत्ति के रूप में आर्थी भावना साध्य रहती है। लिङ् आदि का ज्ञान करण रहता है और अर्थवाद-वाक्य से जन्य प्रशंसा का ज्ञान इतिकर्तव्यता के रूप में होता है - इस प्रकार भावना के तीन अंशों (साध्य, करण, इतिकर्तव्यता) की पूर्ति की जाती है।

इसे हम मीमांसकों के शास्त्रीय मत की दृष्टि से देख सकते हैं। मीमांसक लोग वैदिक विधियों को परम प्रमाण मानते हुए उसीके अन्तर्गत भावना का विवेचन करते हैं। अज्ञात अर्थ का ज्ञापन करने वाले वेदभाग को विधि कहा जाता है। [13] जैसे-**'यजेत स्वर्गकाम:'** अथवा **'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम:।'** यह वाक्य स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले अग्निहोत्र नामक याग के अनुष्ठान का विधान करता है। अग्निहोत्र (साधन) और स्वर्ग (साध्य) के सम्बन्ध का ज्ञान प्रत्यक्षादि प्रमाणों में से किसी से नहीं होता है।

प्रत्येक विधि में कोई न कोई क्रिया होती है जैसे उपर्युक्त विधि वाक्यों में 'यजेत' तथा 'जुहुयात्' क्रियाएँ हैं। इन क्रियाओं को मीमांसक लोग प्रयोजक के मानस व्यापार -विशेष से जोड़ते हैं। यह व्यापार-विशेष 'भावना' के नाम से इस शास्त्र में अभिहित होता है। विधि वाक्य में जो 'यजेत' क्रिया का प्रयोग है उसमें यज् धातु से त प्रत्यय जुड़ा है।

'त' प्रत्यय में दो अंश आख्यातत्व तथा लिङ्त्व। इनमें आख्यातत्व तो दस लकारों में सामान्य रूप से है किन्तु लिङ्त्व केवल लिङमात्र में है। त-प्रत्यय के आख्यातांश से आर्थी भावना और लिङ्त्वांश से शाब्दी भावना समझी जाती है।

'यजेत स्वर्गकामः' इस वैदिक विधिवाक्य में स्थित लिङ् अंश भावयिता, भावक या उत्पादक है। उसका अभिप्राय या व्यापार-विशेष स्वर्गकाम (स्वर्ग चाहनेवाले) पुरुष में यागानुष्ठान -विषयक प्रवृत्ति उत्पन्न करना है। लिङ् लकार ही प्रवृत्त करता है। लिङ् शब्द-निष्ठ होने से इसे शाब्दी भावना कहते हैं। पुरुष की प्रवृत्ति को उत्पन्न करने वाले भावयिता के व्यापार-विशेष को शाब्दी भावना करते हैं (**पुरुषप्रवृत्त्युनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः शाब्दी भावना)।** [14] प्रयोज्य (कर्ता) जब भी लिङ् अंश का श्रवण करता है तो यही समझता है कि यह प्रयोजक वाक्य (लौकिक उदाहरणों में प्रयोजक व्यक्ति) मुझे कर्म में प्रवृत्त करना चाहता है (अयं मां प्रवर्तयति)। प्रयोजक का यह अभिप्राय ही शाब्दी भावना के नाम से मीमांसा जगत् में प्रसिद्ध है।

लौकिक वाक्यों में यह शाब्दी भावना प्रयोजक पुरुष के व्यापार के रूप में होती है जब कि वैदिक वाक्यों में लिङ् या प्रवर्तक प्रत्यय का वाच्य व्यापार होती है। इस भावना में साध्य, करण और इतिकर्तव्यता-ये तीनों अंश रहते हैं। साध्य के रूप में आर्थी भावना, साधन (करण) के रूप में लिङ् आदि का ज्ञान एवम् इतिकर्तव्यता के रूप में अर्थवाद से बोध्य प्रशंसा उपस्थित होती है। शाब्दी भावना के साध्य के रूप में आर्थी भावना का ग्रहण इसलिए होता है कि 'यजेत' क्रिया के अन्तर्गत एक ही 'त' प्रत्यय से दोनों भावनाओं का बोध होता है **(एकप्रत्ययगम्यत्वेन समानाभिधानश्रुतेः)।** [15] स्वर्ग आदि प्रयोजन को लक्ष्य बनाकर याग आदि क्रिया को अनुष्ठित करने का पुरुष में जो मानव व्यापार (कर्म) उत्पन्न होता है उसे आर्थी भावना कहते हैं **(प्रयोजनेच्छा-जनित-क्रियाविषय-व्यापारः आर्थी भावना)।** [16] यह भावना आख्यातत्व-अंश का वाच्य होती है क्योंकि आख्यात सामान्य क्रिया (व्यापार) का वाचक होता है। श्रोता **'यजेत स्वर्गकामः'** वाक्य सुनकर, स्वर्गप्राप्ति की इच्छा से यागकर्म में प्रवृत्त होता है। पुरुष की यागविषयक इस प्रवृत्ति (मानस व्यापार) को ही आर्थी भावना कहते हैं। इसके नामकरण का कारण यह है कि पुरुष अपने अर्थ (स्वर्गादि उद्देश्य) की प्राप्ति के लिए याग में प्रवृत्त होता है। उसकी यागविषयक प्रवृत्ति का हेतु अर्थ-विशेष या प्रयोजन-विशेष है।

इस भावना में भी तीन अंश हैं साध्य, करण और इतिकर्तव्यता। इसका साध्य है स्वर्गादि फल, करण (साधन) है यागादि और इतिकर्तव्यता है प्रयाज (प्रारम्भिक आहुतियाँ) आदि अङ्गों का समूह। किसी कर्म की सम्पूर्ण प्रक्रिया ही इतिकर्तव्यता (Procedure) होती है। किसे पहले करना है और किसे बाद में करना है - इस प्रकार अवान्तर व्यापारों का पौर्वापर्य इसमें निहित होता है। यास्क ने भी जब भाव का विश्लेषण किया है तो उसमें 'उपक्रम-प्रभृति अपवर्ग-पर्यन्त' अवान्तर व्यापारों के पूर्वापर संचालित होने का निरूपण इसी दृष्टि से किया है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि वैयाकरणों की दृष्टि में भावना और क्रिया में कोई महत्त्वपूर्ण भेद नहीं है, ये प्रायः पर्याय के रूप में रखी जाती हैं। क्रिया वाक्यार्थ है - ऐसा कहने वाले वैयाकरण भावना को भी वाक्यार्थ कहेंगे। व्याकरण और मीमांसा के

बीच भावना के प्रकृत्यर्थ होने या प्रत्ययार्थ होने का ही विवाद है **(भावना प्रकृत्यर्थः धात्वर्थः इति वैयाकरणाः, सा प्रत्ययार्थः आख्यातार्थ इति मीमांसकाः)।**[17]

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. जैमिनि – मीमांसासूत्र 1.1.25
2. मीमांसासूत्र 1.1.25 पर शाबरभाष्य।
3. काव्यप्रकाश 2.6
4. साहित्यदर्पण 5.1
5. संस्कृत व्याकरण दर्शन, पृ॰ 411
6. गोविन्द ठक्कुर – काव्यप्रदीप, पृ॰ 17 तद्यावत् पदानां पदार्थमात्रे शक्तिः, नत्वन्वयांशेऽपि।
7. महाभाष्य 1.2.45
8. कैयट–महाभाष्यप्रदीप 1.2.45
9. संस्कृत व्याकरण दर्शन (डॉ. त्रिपाठी), पृ॰ 370
10. वाक्यपदीय 2.1 पर पुण्यराज की टीका (पृ॰ 13)
11. अम्बाकर्त्री व्याख्या वा. प. 2.1 (पृ॰ 14)
12. अम्बाकर्त्री व्याख्या, पृ॰ 13, (वा.प. 2.1)
13. लौगाक्षिभास्कर अर्धसंग्रह, खण्ड–13 (पृ॰ 25) तत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः।
14. अर्थसंग्रह, खण्ड–8 (पृ॰ 15)
15. उपरिवत्, खण्ड–9 (पृ॰ 17)
16. उपरिवत्, खण्ड–10 (पृ॰ 21)
17. अम्बाकर्त्री व्याख्या वा. प. 2.1 (पृ॰ 14), वाक्यपदीय, 2.1, पृ॰ 14